चतुर्थ अध्याय

"दिव्या" उपन्यास को कथावस्तु पृ.९० से ११४

कथावस्तु का स्वरूप

ऐतिहासिक उपन्यासके विशेषा

प्रास्ताविक

"दिव्या" उपन्यास की कथावस्तु

कथावस्तु को विशेषताएँ

निष्कर्ष

संदर्भ सूची

चतुर्थ अध्याय

कथावस्तु का स्वरूप

"कथानक" शब्द यद्यपि अँग्रेजी शब्द "प्लाट" का सही पर्याय नहीं है, किन्तु उपन्यास के अध्ययनमें किसी सीमातक यह शब्द ग्राह्य और प्रचलित है। उपन्यास या नाटकमें घटनाओंके संगठन को प्लाट या कथानक कहा गया है। दूसरे शब्दोंमें, प्लाट घटनाओंका वह साधारण या जटिल ढाँचा है, जिसके सहारे किसी उपन्यास या नाटक का निर्माण होता है।

अरस्तु के अनुसार अच्छे प्लाट के तीन प्रमुख अंग होते है - आरम्भ, मध्य और अन्त। कथानक की एकता इस प्रकारसे घटनाओं को संबंधित करनेपर निर्भर करती है कि आरम्भ में आनेवाली घटनाओंका आभास मिल जाय, मध्य पिछली और अगली घटनाओंसे उद्भासित हो तथा अन्त पिछली घटनाओंसे प्रतिफलित तो हो, पर आगे किसी और घटनाकी ओर संकेत न करता हो। "उपन्यासमें कथानक तत्व का इतना अधिक महत्व बताया गया है कि अनेक विद्वानों ने कथानक तत्वकोही उपन्यास मान लिया है। इस दृष्टिसे विचार करते हुऐ उन्होने कथानक के अतिरिक्त उपन्यासके अन्य तत्वोंको अप्रधानही नहीं माना है, वरन् उन्हे नगण्य भी सिध्द किया है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि उपन्यास का प्रधान तत्व सर्वमान्य रूप से कथानक ही है। इसीलिए कथानक को उपन्यासका प्राण तत्व भी कहा जाता है।

विविध समीक्षकोंने उपन्यास के कथानक को भिन्न भिन्न प्रकारसे परिभाषा की है और विभिन्न रूपोंमें उसकी विवेचना की है, जिस में कथानक को ही महत्त्व दिया है।

उपन्यास के विविध तत्वोंमें सर्वप्रमुख कथानक वह है, जो उपन्यास की रचना का मूल आधार होता है। कथानक में समस्त घटनाएँ और क्रम आनेसे उपन्यास की रचना होती है। कथानक के अभाव में उपन्यास की रचना सम्भव नहीं होती। कथानक के दो रूप है - एक प्रकारका कथानक वह होता है जिसमें सीमित पात्र और घटनात्मक तत्त्व रहते है। इस प्रकारके कथानक विचार अथवा भावप्रधान कहे जा सकते है। इस उपन्यासमें एक ही विचार, घटना अथवा चरित्र की प्रमुखता आदि से अंततक रहती है। प्रासंगिक कथाओं एवं चरित्रों के लिए उसमें अधिक स्थान नहीं रहता।

उपन्यास के कथानक का दूसरा रूप वह होता है, जिसके अंतर्गत हम व्यंग्यात्मक कथावस्तु को रख सकते है। इस प्रकारके कथानक में कथा-भाव, विचार-घटना अथवा चरित्र की दृष्टिसे एकात्मता नहीं पायी जाती बल्कि इसके विपरीत असमें एकसे अधिक घटनाएँ, एक से अधिक चरित्र एवं अनेक प्रासंगिक कथाएँ रहती है।

उपन्यास के तत्वों में सर्वप्रधान कथानक ही है, आशय यह नहीं है कि उपन्यासमें कथानक ही सब कुछ है। वस्तुत: कथानक उपन्यासका मूलभूत तत्त्व है, जिसके अभावमें उपन्यासके

अस्तित्वकी कल्पना नहीं की जा सकती।

महत्व :-

वास्तवमें कथानक का सशक्त और प्रखर रूप में प्रस्तुत होना ही उसके महत्व का द्योतक है। उपन्यासकारने जीवन के उस पक्षविशेष को कितनी गहराई के साथ देखा और अनुभव किया है। और साथ ही वह उसकी सम्भावनाओं और रहस्योंसे किस सीमा तक और किस रूप में परिचित हो चुका है तथा उनकी यथार्थता को कितनी प्रखरता से अनुभव कर चुका है। इसपर ही उपन्यासअथवा उसके कथानक की सफलता निर्भर रहती है।

प्रतापनारायण टंडण जी ने उपर दी हुई उपन्यास के कथानक का स्वरूप, परिभाषा और महत्व आदि का अक्षुण्ण महत्वपूर्ण स्थान है। क्यों कि कथानक एक भित्ति तथा मूल नीव है जैसे मूलभित्ति तथा नीव के सिवा भव्य महलका निर्मान नहीं हो सकता तथा चित्रकार चित्र अंकित नहीं कर सकता, उसी प्रकार कथानक के सिवा उपन्यासका निर्माण नहीं हो सकता इसलिए कथानक का महत्वपूर्ण स्थान है।

ऐतिहासिक उपन्यास के विशेष

ऐतिहासिक उपन्यास सफल होने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं ......

१] जिस युगपर आधारित उपन्यासकार उपन्यास निर्माण करना

चाहता है उस युग के वातावरण से तादात्म्य प्राप्त कर लेना चाहिए।

२] उपन्यासकार को ऐतिहासिक सत्यका पालन करना चाहिए।

३] ऐतिहासिक चरित्र के नायक -[नायिका] का व्यक्ति चित्रण प्रभावशाली होना चाहिए।

४] ऐतिहासिक व्यक्तिके बारेमें लोगोंके मनमें जो धारणा है उन्हें बदलने का या उसके विपरित चित्रण करनेका अधिकार उपन्यासकार को नहीं होता।

५] काल्पनिक प्रसंग ऐतिहासिक सत्यको हानि पहुँचाने वाला न हो।

६] सफल चरित्र-चित्रण और उस युग के वातावरण का सत्याभास करने के लिए उचित भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है।

इन्ही विशेषताओंके कारण ऐतिहासिक उपन्यास श्रेष्ट बनता है। वह पाठकोंको आनंद देता है तथा पाठकों को नई प्रेरणा भी दे सकता है।

प्रास्ताविक :-

"दिव्या" यशपाल का चित्रमय ऐतिहासिक काल के प्रति गहरा मोह होने के कारण लिखा गया यह उपन्यास तीसरा प्रयत्न है, जिसमें लेखकने ऐतिहासिक वातावरण के आधारपर यथार्थ का रंग देने की कोशिश की है। "दिव्या इतिहास नहीं,

ऐतिहासिक कल्पनामात्र है।"[2] लेखक के इस स्पष्टिकरण से ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा देकर उसका मूल्यांकन करना उचित नहीं है। क्यों कि वह सिर्फ ऐतिहासिक पृष्ठभूमिपर लिखा गया ऐतिहासिक वातावरण प्रधान उपन्यास है। ऐतिहासिक विषयपर लिखा लेखक का यह पहला उपन्यास है।

"इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु है।"[3] इसी धारणासे लेखकने दो हजार वर्ष पूर्व के समाज की स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। मौर्यकाल के पतन के पश्चात भारत वर्ष में एक ओर बौध्द धर्म दिनों-दिन विकृत रूप धारण करता जा रहा था। तो दूसरी ओर वर्णाश्रम व्यवस्था अपने अंगभूत दोषों के कारण निष्प्रभ होती जा रही थी। परिणाम स्वरूप समूचा समाज अधोगती की ओर जा रहा था। इसी ऐतिहासिक पीठिका पर "दिव्या" उस समय की शोषित नारी के रूपमें पाठकों के सामने सजीव रुप ग्रहण करती है।

"दिव्या" उपन्यास की कथावस्तु

उपन्यास का कथारम्भ सागल मद्र राज्य की गण परिषद के तत्वावधान में आयोजित एक कला प्रदर्शनिसे होता है। " दिव्या" धर्मस्थ महापण्डित देवशर्मा की प्रपौत्री और कला की अधिष्ठात् राजनर्तकी जनपदकल्याणी देवी मल्लिका की शिष्या है। गणपरिषद के तत्वावधान में एक नृत्य संगीत कला कौशल प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। मल्लिका उत्सव के एक पक्ष पूर्व

से ही "दिव्या" को नृत्य की मुद्राओं और वादकोंको संगीत की मूर्च्छनाओंका अभ्यास करवा रही थी। उत्सव में "दिव्या" हिमश्वेत वस्त्रोंमे वेदीपर आई। उसकी कोमल सुगोल बाहुओं से झीने श्वेत उत्तरीय के छोर मराली के पंखों के रूपमें लटक रहे थे। मराली खोज की मुद्रामें उद्विग्न और चिंताशील थी। नेपथ्य से राजहंस का उत्सुकालीन आह्वान सुनाई दिया। मराली उत्साहित हो उठी। उत्साह और उमंग से पर फड़फड़ाकर वह आह्वान की दिशा और स्थान खोजने के लिए चली और बधिक के जाल में फंस गई। ....
नृत्य प्रतियोगितामें दिव्या को "स्वरस्वती पुत्री" की उपाधि से विभूषित किया गया। नृत्य का यह वर्णन अत्यंत नाटकीय एवं कलात्मक बन गया है।

यशपाल जैसे मार्क्सवादी साहित्यकार की रचना होनेसे इस चित्रण का मूल्य और भी बढ़ जाता है। ऐसे स्थानों के आधारपर लेखक का दृष्टिकोण सीमित और समुचित तथा नीरस नहीं माना जा सकता। उसी अवसरपर दास पुत्र पृथुसेन अपनी योग्यता के कारण सागल का सर्वश्रेष्ठ, खड्गधारी घोषित किया गया। दोनों पुरस्कार विजेता अपनी कला के वेश में साधारण नागरिकों से भिन्न, अपनी कला के प्रतिरूप पात्र जान पड़ रहे थे।

दासपुत्र पृथुसेन के अतिरिक्त सागल का सर्वश्रेष्ठ मूर्तिकार चार्वाक मारिश तथा गण परिषद के संवाहक आचार्य प्रवर्धन के पुत्र वसुधीर के ज्येष्ठ पुत्र रुद्रधीर भी उपस्थित थे। रुद्रधीर को अभिजात वंश के विशेष अधिकारों का बहुत अधिक गर्व है। वह शिविका में कंधा देने के अवसरपर पृथुसेन को ललकारता

है, " दास पुत्र को अभिजात वंश के युवकोंके साथ शिविका में कंधा देनेका अधिकार नहीं।"[4]

परंतु प्रणय वर्ग इन सीमाओं को नही मानता। पृथुसेन अपनी हीनता को अस्वीकार कर संघर्ष के खिलाफ सामना करने के लिए तैयार रहता है, दिव्या भी पीछे नहीं रहती। दिव्या और पृथुसेन सब बाधाओंको उपेक्षा करके विवाह का निश्चय कर लेते है। विधि की विडम्बनासे पृथुसेन को, राजा की आज्ञासे युध्द के लिए देश की सीमा पर जाना पड़ता है। पृथुसेन विजयी होकर नवीन उत्साह और प्रेरणासे वापस आता है। इस से निर्भय सागल नगरी विजय के उन्माद से आनंदोत होती है।

दास की हीनता से मुक्त होने के लिए पृथुसेन के पिता उसका विवाह गणपति की पौत्री सीरो से करना चाहता है। पृथुसेनने अपनी इच्छा और रहस्य पितापर प्रकट कर दिया वह दिव्या को विवाह का वचन दे चुका था। जन बल और धनबल को महत्त्व देनेवाले अनुभावी पिता ने अनेक प्रकारसे पुत्र को समझाया तथा अपने सम्मान और भविष्य की दुहाई देकर पृथुसेन को सीरो से विवाह के लिए विवश कर दिया। "पुत्र, देवताओं ने प्रसन्न हो तुम्हे विध्या, बुध्दि, कौशल, धन और रण में विजय का सम्मान दिया है। समय पर वे देवता तुम्हें स्त्री-सुख देने में कृपणता न करेंगे। एक दिव्या क्या, अनेक लावण्यमयी, कलामयी ललनाएं तुम्हारे भोग के लिए प्रस्तुत रहेंगी। जो बुध्दिमान अवसर के अनुकूल व्यवहार करता है उसके लिए देवता इस लोक और परलोक के सभी सुखोंका वरदान देते है। पुत्र अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करो।"[5]..

"वत्स यौवन के प्रारंभमें नारी के प्रति आवेग प्रबल होता है। पुत्र आवेग एक वस्तु है और जीवन दूसरी। जीवन जल का पात्र है। आवेग उसमें उठा हुआ एक बुदबुदा मात्र। विवाह को जीवनमें सामर्थ्य और सफलता का साधन बनाओ, सामर्थ्य से ही मनुष्य भोग और कामना पूर्ण करनेका अधिकारी होता है।" [6]

श्रेष्ठी प्रेस्था पृथुसेन को समझाते हुए कहते है - " पुत्र, स्त्री जीवन की पूर्ति नहीं, जीवन की पूर्ति का एक उपकरण और साधन मात्र है।" [7] सीरो से पृथुसेनने अगर विवाह न किया तो उसे वृध्द देवशर्मा की कृपापर ही निर्भर रहना पड़ता है। सीरो से विवाह कर पृथुसेन महाकुलीन बन सकता है और उस के पश्चात दिव्यासे विवाह करने में भी कोई कठिनाई नहीं रह सकती। इस दृष्टिसे पृथुसेन के मनमें सीरो से विवाह कर दिव्या को भी पाने की समस्या मनमें निरंतर रहती, और मनमे इस रहस्य को छिपाकर ही सीरो से विवाह करने के लिए उसके प्रति अनुराग और उत्साह दिखाने लगा।

"दिव्या" पृथुसेन के साथ विवाह के सम्बंध में कुछ विचार निराशाके स्वरमें छाया के सामने रखाती है - " देव, जाने आर्य को क्या हो गया ? .... आर्य के लिए सीरो यदि इतनी ही काम्य हो गई है तो भी वे मेरी अवज्ञा क्यों कर रहे है। मैं सीरो के साथ सख्य-भाव से सपत्नीत्व स्वीकार करूँगी। .... जैसी की एक वृक्षकी छाया में अनेक प्राणी विश्राम पाते हैं। गजराज की अनेक पत्नियाँ होती है, उसी प्रकार आर्य की भुजा के आश्रय में हम दोनोंही रहेगी।" [8] दिव्या इस निश्चय से पृथुसेन के प्रासाद में

पहुँचती है, तो घर के भीतर बगीचे से दासी द्वारा आया पृथुसेन का उत्तर यवनीने निवेदन किया - "आर्य क्षमा निवेदन करते है। वे अस्वास्थ्य के कारण संगति लाभ करने में असमर्थ है।"[9] दिव्या के कानोंने यह उत्तर सुना पर हृदयने विश्वास नहीं किया लेकिन यवनी अपना कर्तव्य पूरा कर चुकी थी। इस से दिव्या के हृदयपर गहरी चोट हुई। क्यों कि आशा के जिस दिपक को प्रयत्न के अँचलमें संभाले हुए वह मार्ग खोजती हुई यहाँ पहुँची थी, उसे पृथुसेन के उत्तर के झोंके ने सहसा बुझा दिया।

गर्भिती दिव्या लज्जा और आत्मग्लानि से अभिभूत हो पिता के प्रासाद में लौटकर नहीं जाती। यहाँ से दिव्या के जीवन का नया दुःखमय क्षण प्रारंभ होता है। रात्रि के घने अंधकारमें दिव्या अपनी धात्री के साथ भटकती हुई वेश्याओं के मार्ग से निकलती है, जहाँ वह दास विक्रेता प्रतुल के हाथों पड़ जाती है। "दासी दारा अभी प्रसव वेदनासे मुक्त न हो पाई थी कि दैवने उसको ग्राहक दास व्यापारी भूधर के द्वारपर २० स्वर्ण मुद्रामें भेज दिया।"[10] दैव की ईच्छा यही समाप्त न हुई तो दैव ने दास व्यापारी चक्रधर को भेजा। प्रसव के पश्चात याज्ञिक पुरोहित की पत्नी विषमज्वर से पीड़ित हो गई थी। रोगी माता का स्तन शिशु को देने का निषेध था। सद्य प्रसूता दासी को चक्रधर ने उसके पुत्रसहित भूधर से ५० स्वर्ण मुद्रा से खरीद लिया। अपनी संतान को गोद में लिये दाराने पुरोहित के पुत्र को ह्रदयसे लगा लिया। उनकी स्थिती गाय की तरह थी, जिसकी बछिया गो-दोहन से पूर्व स्तनोंपर छोड़-बछिया का स्पर्श पाकर स्तन में दूध ढिल देती, बछिया को गले की रस्सीसे खींच गाय के

खुँटेपर बांधा दिया जाता और उसका दूध दासी तथा द्विज पत्नी पात्र में लेती। " पुत्र शाकुल के सम्मुख माता की ममता से दारा के स्तनोंसे दूध और आँखोंसे जल बहने लगता, उससे स्वामी की सन्तान तृप्त होती।" [11]तात्पर्य यह है कि पुरोहितके घर दिव्या को जो नाटकीय यातना सहन करनी पड़ती उसे पढ़कर पत्थर दिल भी पिघल पड़ता है, मानव हृदय तो क्या ?

दिव्या की कल्पना मौन रहनेसे बावली होकर कह उठती - "यदि उस के शाकुल का जन्म इन परिस्थितियोंमे न होकर पृथुसेन प्रासाद में होने से उत्सव और समारोह से दिशामें गूँज उठती। .... वह जैसे पात्र से छलक गई बूँद की भाँति है जो लुढ़ककर समाप्त हो जाने के लिए ही है परंतु सन्तान की दुष्ट पृथुसेन की सन्तान नहो मानती।" [12] चिंताओं मे मग्न दिव्या की कल्पना अतीत में जाती और अपना पालण-पोषण धात्री के स्तन से होनेसे उसका कर्मफल है। बौध्द श्रमण के अनुसार - "मनुष्य अपने कर्मसे ही दुःख पाता है। परंतु उस छोटे नन्हे बालक का कर्मफल उत्पन्न होनेसे ही पूर्व फूट गया वह बालक अपना अपराध तथा दुष्कर्म जाने बिना बचनेका निश्चय कैसे करे ?" [13] इसका फल पृथुसेन से गर्भधारण के सम्बन्ध में सोचती है।

दिव्या [दारा] पुरोहित के अत्याचार से मुक्ति तथा शांति के लिए बुध्द के शरण में जाती, बौध्द स्थविर से शरण की प्रार्थना करती है, परंतु "धर्म के नियमानुसार स्त्री के अभि-भावक की अनुमति के बिना संघ स्त्री को शरण नहीं दे सकता।" .... दिव्या प्रश्न करती है - " भगवान तथागत ने तो वेश्या

अम्बपाली को भी संघ में शरण दी थी।"[14] इसपर वेश्या स्वतंत्र नारी है। दासत्व स्वीकार की हुई परतंत्रताकी जंजीरो में जकडी गई कि, उसको बौध्द स्थविर शरण नहीं देता।

धर्म से त्यागी या प्रताड़ित नारी 'दिव्या' पथपर आने-जानेवाले नागरिकोंसे वेश्याओंका मार्ग पूछती है। इस स्थानपर यशपालने धर्म के प्रयोजन और व्यवहार को उग्र रूप में प्रकट कर भर्त्सना के स्वर में नागरिक के माध्यमसे कहा - "माता का सम्मानित पद पाकर तु वेश्या बनकर समाज को शत्रु बनना चाहती है ? धन के लोभ में अपना शरीर और अपनी मातृत्व की शक्ति बेचना चाहती है ? .... हतभागी तू वेश्या बनने योग्य भी नहीं है। विलासी के प्रणय के मूल्य में तू क्या देगी ? तू लुट चुकी है किसी ने तेरा रस चुसकर फालगुमात्र छोड़ दिया है। तेरी आकर्षक शोभा लुट चुकी है ..... चुसी जाकर जीवन के अयोग्य होकर जीवित रहनेका मोह छोड़ दे। यमुना की शीतल धार में विश्राम ले।"[15] यह कहनेवाले मारिश के आवाज को पहचाना भी, कुछ कह न सकी। पुरोहित के आदमी दासी को पकड़ने पहुँचते दिव्या यमुना में ऊँचे तटसे जल में कुद पड़ती है। दिव्या जैसी अभागिन को मृत्यू भी शरण में नहीं लेती, यमुना में कूदने पर शूरसेन प्रदेश की जनपद कल्याणी राजनर्तकी देवी रत्नप्रभा दिव्या को बचाकर पुरोहित को दासी क्रय मूल्य देकर शरण में ले लेती हैं। वहाँ उसका नाम अंशुमाला पड़ता है।

दिव्या रत्नप्रभाकी नृत्य-संगीत गोष्ठियों का श्रृंगार बन जाती है परंतु अपना आत्मसम्मान नहीं खो सकती। क्यों कि वह एक कला की कठपुतली है जिसके द्वारा कला प्रेमी तुष्टि

अनुभाव करते है परंतु वह निस्संग रहती है। "श्रावण मासमें प्रति वर्ष मथुरापुरीके उपान्त, वृन्दावन में "दोल महोत्सव"होता। समस्त नगरों और प्रदेशोंसे आबाद-वृध्द, रसिक-समूह और कलाविद् वहाँ एकत्र होते। जन विनोद के लिए और कलाविद् कला विमर्श के लिए ज्ञानवृध्द और वयोवृध्द कलावन्तों को कष्ट साधना के सूक्ष्म तत्त्व और नर्तकियोंका अंगलास्य, कला के सभी अंग वहाँ प्रस्तुत होते है।"[16] ऐसी एक संध्या में मारिश वहाँ पहुँचा।

मारिश के तर्क-वितर्क से रत्नप्रभा को विनोद और संतोष होता था। अंशुमाला दिव्या का अवसाद दूर करने के लिए मारिश से उसका परिचय करा देती है और दिव्या उसके सम्मुख आई तो किस रूपमें -" अंशुमाला मूल्यवान परंतु उपेक्षा से धारण किए हुऐ अत्यंत शुभ्र वस्त्र पहने अलिन्द में प्रस्तुत हुई। उसके शरीर पर कोई आभूषण न था, एक पुष्प भी नहीं। आलस, उदासीनतामें, उपेक्षित शुभ्र वस्त्रोंमें फूटी पड़ती अपने शरीर की कमनीयता के प्रति वह इस प्रकार निरपेक्ष थी जैसे वह उसके वश का विषय नहीं।"[17]

मारिश ने दिव्या को पहचान लिया शुभ्र-वस्त्रधारी संकुचित, उदास नर्तकी के पीछे उसे पाँच वर्ष पूर्व देखा व्यथित मराली का नृत्य अधार में दिखायी देने लगा। मारिश पूछता है आप यहाँ कैसे ? दिव्या उत्तर देती है - " भाग्य और कर्मफल। मारीश द्वारा यशपाल कर्म और भाग्य के विश्वास पर आघात करते है - "भाग्य का अर्थ है, मनुष्य की विवशता और कर्मफल का अर्थ है, कष्ट और विवशता के कारण का अज्ञान।"[18]

इससे पहले मारीशाने सागरमें दिव्या के प्रति आकर्षण अनुभव किया था। परंतु वह आकर्षण कामनाका नहीं केवल स्तुति का था। कारण मारिशाकी असमर्थता और हीन स्थिति के बीचमें दिव्या एक खाई की तरह थी। रत्नप्रभा के प्रासाद में "दिव्या गर्व और गौरव के दुर्धर्ष शिखर से उतर कर सम भूमिपर मारिशा हाथ की पहुँचमें आ गयी थी। मारिशा समवेदना का हाथ बढ़ाकर उसे स्पर्श कर सकता था।"[19] इसी कामना की पूर्ति के लिए मारिश रत्नप्रभा के यहाँ आता उससे तर्क करता और अन्त में कहता -

"प्रयत्न और चेष्टा जीवन का स्वभाव और गुण है। जब तक जीवन है, प्रयत्न और चेष्टा रहना स्वाभाविक है।.... . जीवनमें एक समय प्रयत्न की असफलता मनुष्य का संपूर्ण जीवन नहीं है। जीवन का हम अन्त नहीं देख पाते, वह निस्सीम है। वैसेही मनुष्य का प्रयत्न और चेष्टा सीमित क्यों हो ? असामर्थ्य स्वीकार करनेका अर्थ है, जीवनमें प्रयत्नहीन हो जाना जीवन से उपराम हो जाना।"[20]

ऐसी ही युक्तियों द्वारा मारिशा दिव्या को पुन: जीवन की ओर प्रेरित करना चाहता है, उस दिव्याको जिसकी समस्त इच्छाएँ मर चुकी थी, जो आशा और इच्छा को अब दु:ख का मूल समझने लगी थी। दिव्या त्रस्त है पर प्रश्रय के मूल्यपर वह जीवनकी सार्थकता नहीं चाहती। "जीवन की विफलतामें भी उसे वेश्या की आत्म-निर्भरता स्वीकार है। यह उसका अन्तिम निश्चय था।"[21] जिसे वह मारिशा के सामने रखती है।

मारिशा विफल मथुरापुरीसे लौट गया। अंशु के व्यवहारमें परिवर्तन आने लगा, कला के अध्यावसाय में उत्साह पाने

लगी। रूद्रधीर से भी दिव्या की भेट होती है, जो उसे वेश्या ही समझता है। उसे अपने द्रव्य, धनपर गर्व होने के कारण अंशुमाला के नृत्य के समय बहुमूल्य किमती मुक्ताहार चरणोंमें फेकता है। नृत्य के पश्चात् दिव्या उसे लौटा देती है। इसपर रूद्रधीर व्यंग्य करता है - "वेश्या का आसन स्वीकार कर लेनेपर क्या द्रव्य के लोभ की सीमा न रहती।"[22] "नहीं आर्य।" अंशुमाला अब भी मुस्करा रही थी, "दासी आर्य की भावनासे कृतार्थ है।" भावना को शिरोधार्थ कर, उसने माला मस्तक झुकाकर कहा - "केवल भावना का आधार यह मुक्तामाला लौटा रही हूँ जैसे अर्ध्यपात्रासे केवल अर्ध्य ग्रहण किया जाता है, पात्र नहीं। ऐसा भी आर्य की विद्वेश की परिस्थिति है कारण है।"[23]

अंशुमाला ने नि:संकोच भावसे मुस्कान लिए रूद्रधीर को दृष्टिसे श्रेष्ठ विप्रकुल की कुमारी का रूप धारण कर लिया। रूद्रधीर ने दिव्या को पत्नी रूपमें ग्रहण कर महादेवी के पदपर आसीन करना चाहा परंतु दिव्या ने दुर्भाग्य की अग्नि में जलकर स्वतंत्र नारीका जो कलंक पाया था वही उसे प्रिय रहा। अनेक प्रकारसे अनेक तर्कोंद्वारा रूद्रधीर ने दिव्यासे आचार्य की पत्नी के रूपमें सागल लौटनेकी प्रार्थना की, परंतु दिव्या ने उत्तर दिया - "नदी का जल एक बार उच्छृंखल होकर प्रदेश में फैल जानेपर पुन: लौटकर नदी के तटोंमें नही सिमट सकता।"

पृथुसेन का विवाह सीरो से हुआ। उसने सीरो के हठ के कारण दिव्या को खोया और दिव्या को खोकर उसने अपने जीवन के चिरपोषित स्वप्नोंको खो दिया। सीरो उच्छृंखल थी,

"उस के रागरंगित ओठ केवल मदिरा से धुलते रस वैचित्र्य उसे भिन्न भिन्न ओठों में ही मिलता था। स्पर्श-सुख उसके लिए युवा पुरुष की बलिष्ठ भुजाओं और लोमपूर्ण कठोर वक्षस्थल के अतिरिक्त न था।" [24]

पति के अधिकार से पृथुसेनने पत्नी को प्रताड़णा की। सीरो के वज्राघात से पृथुसेन को चुप रह जाना पड़ता। " मनमें संतोष के प्रयोजन से पृथुसेन को दृष्टिमें सीरो केवल हेय शव-मात्र थी परंतु गणपति की पुत्री के नाते जन की श्रध्दा अपनाये रखने के लिये अत्यंत उपयोगी। वह अपने कुल की स्थितिसे जन-समाज के सम्मुख पृथुसेन की महिमा बढ़ा रही थी। पृथुसेन उसे अनायास स्वीकार करता जा रहा था। पिता की अभिसंधि और प्रयोजनसे एक और युध्द की घोषणा कर, महासेनापति का पद और निर्बाध निरंकुश अधिकार समेटने के षड़यंत्र में उसके विचार उलझे हुये थे वह अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में था।" [25]

रूद्रधीर ने सागल लौटकर पैनी दृष्टिसे स्थिति को समझकर देवी मल्लिका से मिला और उसने जाना कि मल्लिका पृथुसेन से अत्यंत असंतुष्ट थी। उसने अपनी शिष्या मादुलिका को निकाल दिया था। कारण था मादुलिका केप्रति पृथुसेन का उच्छृंखल आकर्षण। मल्लिका के सहयोग द्वारा रूद्रधीर पृथुसेनको राज्यच्युत कर धर्म की रक्षा करना चाहता है। पृथुसेन मल्लिका और रूद्रधीर के षड़यंत्रमें फंस एक रात वहाँ से जान बचाने के लिए भाग निकलता है और संघाराम में जा छिपता है। अपनी विकल अवस्थामें वह स्थविर चीवुक के उपदेशों द्वारा शान्ति प्राप्त करता

है और धर्म की शरण ग्रहण कर लेता है। भिक्षु के रूपमें ही वह रूद्रधीर से भेंट करता है। स्थविर जीवक के चातुर्य से रूद्रधीर की प्रतिहिंसा अपूर्ण रही गई।

मद्र में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना होकर गणराज्य और सागल नगरी से हीन वर्ग की उच्छृंखलता दूर हो गई। कला का अनुष्ठान और परिपाटी होनेपर भी कला को वह सजीवता न आसकी जो मल्लिका के यौवन-काल के समय थी। वृध्दावस्थामें पुण्यार्थ तीर्थाटन के व्याज से देवी मल्लिका अपने आसन की उत्तराधिकारिणी के खोजमें अनेक तीर्थों, प्रदेशों और जनपदोंमें यात्रा करती हुई शूरसेन देशकी ओर गई। अंशुमाला की कीर्ति सुन वह वहीं पहुँचती है। दिव्या को पहचान वह चिल्ला उठती है - "दिव्या दिव्या! मेरी पुत्री, मेरी आत्मा की सन्तान।" [26]

मल्लिका दिव्या को पुन: सागल नगरी में रखना चाहती है, लेकिन दिव्या को अधिष्ठात्री के सम्मानित पद पर अधिष्ठित करके भी मल्लिका ऐसा नही कर सकती, कारण अभिजात समाज दिव्या को नगर-कल्याणी का पद ग्रहण करनेमें अपना अपमान समझाता है।

बहिष्कृत दिव्या पुन: पान्थशालामें पहुँचती है, वहाँ सागल का अमात्य रूद्रधीर पुन: दिव्या को महादेवी का पद स्वीकार करनेका प्रस्ताव रखता है, पदच्युत भिक्षु पृथुसेन उसे संघ की शरण में आनेका निमन्त्रण देता है, और चार्वाक् मारिश "नारीत्व की कामनामें उसे पुरुषात्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान-प्रदान

चाहता है। वह नश्वर जीवनमें संतोष की अनुभूति दे सकता है.... संन्तति की परंपरा के रूपमें मानव को अमरता देसकता है। और दिव्या आर्द्र स्वर में पुकार उठती है - "आश्रय दो आर्य।" [27]

कथावस्तु की विशेषताएँ

"दिव्या" बौध्द कालीन उपन्यास होनेके कारण ईसा पूर्व दूसरी शताब्दि के भारतीय जनजीवन का चित्रण उपन्यासका प्राणतत्व है। तत्कालीन वेश-भूषा, रहन-सहन, विचारप्रणाली आदि का स्वाभाविक चित्रण अत्यंत मार्मिक बना हुआ है। इससे उपन्यासमें सजीवता आयी है। आरम्भ के मधुपर्व के रोचक वर्णन का प्रभाव पाठकोंपर होता है। कथावस्तु दास-शोषण तथा नारी-शोषण के चित्रणसे समस्यामूलक बन गई है। "दादा कामरेड" तथा "देशद्रोही" की अपेक्षा इसमें समस्याका चित्रण अधिक गहराई से हुआ है। समस्या चित्रणमें सूक्ष्मता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जैसा कि पूर्ववर्ती उपन्यासोंमें राजनीतिक चित्रण है, इसमें राजनीतिका सर्वथा अभाव होनेसे डॉ. रामविलास शर्मा ने "दिव्या" के सम्बन्ध में लिखा है कि - "यशपाल का सबसे प्रभावशाली उपन्यास "दिव्या" है कारण कि यहाँ राजनीतिकी स्लिप खड़खड़ाती नहीं।" [28]

जैसा कि प्रकाशचंद्र मिश्र का कथन है कि " मात्र कथा कहना तथा पाठकोंका मनोरंजन करना यशपाल काध्येय कभी नहीं रहा। उनके उपन्यासोंकी कथावस्तु स्वभावत: समस्या प्रधान होती है। मनुष्य जीवन तथा समाज के बारेमें चलनेवाले अपने चिंत न

को उनकी यथार्थ समस्याओं के साथ वे अपने उपन्यासोंकी कथा-वस्तु में अभिव्यक्ति देते है।"[29] "दिव्या" की कथावस्तु का निरिक्षण इस दृष्टिसे करनेपर यह ज्ञात होता है कि यशपालने अपने इस उपन्यासमें तत्कालीन दास प्रथा, तथा नारी कों भोग्या के रूपमें अपनाने की समस्याओंका गहराईसे विश्लेषण किया है। उपन्यास में पृथुसेन साहसी, शस्त्रविद्या प्रवीण एवं वीर होते हुए भी केवल दास होने के कारण वह सभी सामाजिक सम्मानोंसे वंचित रहता है। द्विजकन्या की शिविका को भी कंधा देनेका अधिकार उसे नहीं होता। "दिव्या" का पृथुसेन पाठकोंको महाभारत में वर्णित कर्ण को याद दिलाता है जिसे समाज सारथिपुत्र होने के कारण हमेशा अपमानित करता था। जन्म के अपराध का मार्जन खोजनेवाला पृथुसेन कर्ण नहीं तो क्या ? जन्म के अन्याय का प्रतिकार करनेकी उम्मीद रखनेवाला पृथुसेन सभी दासोंका प्रतिनिधी बन जाता है। पृथुसेन की समस्या दासवर्गकी समस्या है। यशपाल दास-जीवनका यथातथ्य विवरण करना पर्याप्त नहीं मानते बल्कि सामाजिक दुर्बलता से ऊपर उठाने की कोशिश करते है। दुर्बलोंको शक्ति दिलाते हुए कहते है - "संकट सब स्थान और समय तेरे साथ रहेगा। संकट का पराभव कर, पराभूत होना ही पाप है। उसका फल तू तत्काल भोगेगा। तू "स्वतंत्र" कर्ता है। स्वतंत्रता अनुभव करना ही जीवन है, जीवन के लिए युध्द कर। मृत्यू भय का अन्त है। जीवनमें उत्तेजित हो। कायर मत बन।"[30]

दास जीवन में दास मनुष्य न रहकर सामन्तो के सुख चैन का साधन मात्र बना रहता है और नारी का भोग्या के सिवा और कोई मूल्य नहीं रह जाता। यशपाल ने "दिव्या" को

कथावस्तु में नारी शोषण की समस्याको मार्मिक ढंगसे प्रस्तुत किया है। इसमें नारी स्वतंत्रता के सम्बन्ध में कोई गुंजाईश नहीं है। नारी के अभिशाप्त होने की शोकान्तिका "दिव्या" है जो उच्च वर्णिय होकर भी नारी होने के कारण नपकीय यंत्रणाओं के जालमें निरंतर फँसी रहती है। उस समय नारी के लिए मृत्यु के सिवाय मुक्ति के लिए दूसरा उपाय नहीं था। नारी उस जमाने में वेश्या थी। वह वेश्या ही नहीं अपितु जनपद कल्याणी वेश्या थी। इससे बदतर जीवन और क्या हो सकता है ? लेखकने "दिव्या के रूपमें तत्कालीन कलंक से आतंकित, अभिशिप्त, निरीह नारी, जो समाज और व्यक्ति दोनों स्तरोंपर शोषण का केंद्र बनी थी, उसका जो चित्रण किया है, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था का यथार्थ है, उसे पढ़कर विश्वास नहीं होता कि महानने अतीत का जनजीवन इतना हेय भी हो सकता था।

प्रस्तुत उपन्यासमें इन समस्याओंके साथ वर्ग-संघर्ष को भी चित्रित किया है। ईसा पूर्व दूसरी शती में समाज व्यवस्था पर सामन्तोंका, अभिजात वर्ग का प्रभाव था। समाजमें उत्पीड़क और उत्पीड़ित दो ही वर्ग थे। उत्पीड़क उत्पीड़ितोंके शोषण के लिए सदैव तैय्यार था, तो उत्पीड़ित अपनी दुर्बलताओं के कारण असंघटित होने के कारण चाहते हुए भी विरोध नहीं कर सकते थे। यह समाज अपने जींदगी की सार्थकता, प्रचलित धर्म भावनाओंके बोझ के नीचे उत्पीड़ित हुआ जाने में ही मानता था। समाज की ब्राहमण क्षत्रीय, वैश्य जातियाँ कुलीन समझी जाती थी। वर्णाश्रम के श्रेष्ठता के कारण शासन पर अधिकार उनका ही था। शेष शुद्र और दास अकुलीन थे। अकुलीन से क्षमता होनेपर भी उपेक्षित रह जाते थे। इन चित्रणों के माध्यमसे लेखकने अकुलीन को ऊपर

उठने की उमंग का चित्रण मार्मिक रूपसे किया है। विशेषकर अपने अस्तीत्व के लिए दिल कचोट देते है। अभिजात वर्ग अकुलीनोंको इतना लूटते थे कि वे कंगाल हो जाते थे। अकुलीन इसी में ही अपना भाग्य मानते क्यों कि उन्हे दुबार लूट जानेका डर नहीं था। दीन दास अपने दुख को भूलने के लिए शराब पीते थे। कभी कभी दुख भूलने का सौभाग्य भी उनके भाग्य में नहीं होता था, क्यों कि मद्य का मूल्य चुकाने के लिए उनके पास स्वर्ण-मुद्रा नहीं होती। इन दासों को सामंत अपनी रक्षा के लिए युध्द में भेजते थे और शोषण के बलपर सुखमें पलते थे। एक तलवार गढ़नेवाले का कथन इस संदर्भमें अत्यंत मार्मिक है। वह अपने मित्र से कहता है - "जो खा लिया, पि लिया वही मेरा है।" श्रमिकोंके परिश्रमिक पर भी अभिजात वर्ग का अधिकार था। इससे बचने के लिए वे मद्य का सेवन करते थे। अपने जीवन की शोकान्तिका वह बताता है, "मै दिनभर उग्र ताप में बैठकर तलवारे गढ़ता हूँ। वही तलवार हाथमें लेकर राज्पुरुष मेरे पुत्र को बलात् सैन्य दल में ले गये। मेरा पुत्र केंद्रस के खड्ग का प्रहार सहने दावँ जाएगा और याजक, पुरोहित मेरे दिये राजबलिके द्रव्य से मंत्रपूत सुरापान कर बलि के मांस का भोजन कर मंत्रपाठ द्वारा रक्षक देवता दासियोंके अंक में कर शय्यारूढ होने का पराक्रम करेगा और खड्ग के आघात से काँपता हुआ मेरा पुत्र कायर कहलाएगा।"[31] विषमता का मार्मिक चित्र और कोई हो सकता है ?

विभिन्न विचार धाराओंका संघर्ष यशपालके उपन्यास में न हो तो वह आश्चर्य की बात होगी। पूर्ववर्ती उपन्यास "दादा कामरेड" में पूँजीवाद, गांधीवाद, समाजवाद जैसी विचार-

धाराओंका संघर्ष है, तो "देशद्रोही" में कॉंग्रेस और साम्यवादी दलकी विचारधारा का संघर्ष है। "दिव्या" ऊपर निर्दिष्ट दोनों उपन्यासोंमें वर्णित विचार संघर्ष के विषय की दृष्टिसे सर्वथा भिन्न कहा जाता है। यशपालजी राजनीतिक विचारोंके प्रचारक होने के आरोपसे मुक्त तो नहीं परन्तु विशिष्ट विचार धारा की दृष्टिसे काफी ऊपर हो उठे है। इसमें उन्होंने अपनी निजी विचार-धारा के खिलाफ होने वाले बौध्द दर्शन को ज्यों-का त्यों प्रकट किया है और लेखककी विशालता का परिचय दिया है। बौध्द दर्शन के विश्लेषण में उन्होंने लिखा है -

" आर्य, रक्तपात शत्रु को पराजित करने का सफल उपाय नहीं । शस्त्र द्वारा शत्रु का वध किया जा सकता है। उसे कुछ काल के लिए बस में किया जा सकता है, परंतु विजयी नहीं किया जा सकता।" 32

प्रस्तुत कथावस्तु में तत्कालीन सामाजिकएवं धार्मिक विचार संघर्षको प्रस्तुत किया है। ब्राहमण धर्म, बौध्द धर्म एवं चार्वाक दर्शन जैसी परस्पर विरोधी विचारधारा के संघर्ष को प्रस्तुत कर चार्वाक दर्शन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है। ब्राहमण धर्म जातिवर्णाश्रम की शक्तिपर बलवत्तर हुआ है, उसकी धारणा है कि वंश और कुल ईश्वरीय देन है। दूसरी ओर बौध्द धर्म निर्वाण के मार्गमें खोया दिखाया गया है। इन दोनों विचारधाराओं के परिपार्श्वमें नास्तिकतावादी चार्वाक दर्शन धर्म के स्तर से ऊपर उठ सामाजिक स्वास्थ्य का साधन बन सामने आता है, जो लेखक के लिए वांछनीय है। इस दृष्टिसे इस संघर्ष चित्रण को सफल कहा जा सकता है। इस विचार संघर्ष में लेखकने लोक-

परलोक, पाप-पुण्य, जय-पराजय जैसी बातोंपर विभिन्न दृष्टिकोन से प्रकाश डाला है जो पाठक के चिन्तन मनन के लिए बाध्य करता है।

निष्कर्ष

सिध्दहस्त यशपाल जी का "दिव्या" उपन्यास कथावस्तु की दृष्टि से सफल माना जा सकता है। विस्तृत पटल पर फैली उपन्यास की कथा होते हुए भी उसमें कथासंघटन सुगठित है। ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण उपन्यासानुकूल तथा भावानुकूल भाषा का लेखक ने प्रयोग किया है। प्राचीन इतिहास के चंद तथ्यों को लेकर काल्पनिकता का पुट देकर लेखक ने कथावस्तु को सुगठित बनाया है। "दिव्या" की कथा में एक सहज प्रवाहमयता है। जिसके कारण कथावस्तु बिखरी हुई नहीं लगती। ऐतिहासिक उपन्यास के अनुरूप भाषा पात्रानुकूल, भावानुकूल तथा देश-काल-वातावरणाकूल बन पड़ी है। यशपाल जी का "दिव्या" यह उपन्यास विस्तृतता के दायरे में कहीं कहीं अशृंखल लगता है। फिर भी संपूर्ण उपन्यास के प्रभाव में कमी नहीं आ चुकी है। इसलिए कथावस्तु तथा विषय की दृष्टिसे "दिव्या" उपन्यास सफल माना जा सकता है।

संदर्भ सूची

१.	प्रतापनारायण टंडन	हिंदी उपन्यास कला	पृ.१२७ ते १३५
२.	यशपाल दिव्या	प्राक्कथनसे उधृत	पृ. ६
३.	वही	दिव्या	पृ. ६
४.	यशपाल	दिव्या	पृ. १८
५.	वही	दिव्या	पृ. ८५
६.	वही	-"-	पृ. ८७
७.	वही	-"-	पृ. ८७
८.	वही	-"-	पृ. ९३
९.	वही	-"-	पृ. ९७
१०.	वही	-"-	पृ. १२१
११.	वही	-"-	पृ. १२२
१२.	वही	-"-	पृ. १२३
१३.	वही	-"-	पृ. १२३
१४.	वही	-"-	पृ. १२७
१५.	वही	-"-	पृ. १२९
१६.	वही	-"-	पृ. १४३
१७.	वही	-"-	पृ. १४५
१८.	वही	-"-	पृ. १४६
१९.	वही	-"-	पृ. १५२
२०.	वही	-"-	पृ. १५२
२१.	वही	-"-	पृ. १६३
२२.	वही	-"-	पृ. १७०
२३.	वही	-"-	पृ. १७०

२४. वही दिव्या पृ. १७७

२५. वही -"- पृ. १७९

२६. वही -"- पृ. २१०

२७. वही -"- पृ. २१८

२८. प्रवीण नायक यशपाल का औपन्यासिक शिल्प पृ. १११

२९. प्रकाशचंद्र मिश्र यशपाल का कथा साहित्य पृ. ५७

३०. यशपाल दिव्या पृ. ५६

३१. वही -"- पृ. ५४

३२. वही -"- पृ. १९६